



अध्याय १५

पुरुषोत्तम योग



श्रीभगवानुवाच ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १५-१ ॥

भागवान श्री कृष्ण ने कहा - ऐसा कहा गया है कि एक अविनाशी बरगद का वृक्ष है जिसकी जड़ें ऊपर की ओर हैं, शाखाएँ नीचे की ओर हैं और जिसके पत्ते वैदिक मंत्र हैं। जो इस वृक्ष को जानता है, वह वेदों का ज्ञाता है।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।

अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ १५-२ ॥

इस वृक्ष की कुछ शाखाएँ ऊपर की ओर फैली हुई हैं और अन्य नीचे की ओर बढ़ती हैं, जो भौतिक प्रकृति के गुणों से पोषित होती हैं। पेड़ की टहनियाँ इन्द्रिय-वस्तु हैं, और जड़ें जो नीचे की ओर विस्तृत हैं वे मानव तल तक पहुँचती हैं, और ये मानव समाज के बंधनकारक कर्मों का कारण हैं।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।

अश्वत्थमेनं सुविरुढमूलं असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ १५-३ ॥

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ १५-४ ॥

इस वृक्ष के रूप को इस संसार में प्रत्यक्ष देखा नहीं जा सकता। सचमुच, कोई भी पूरी तरह से इस वृक्ष को समझ नहीं सकता कि यह वृक्ष कहाँ से शुरू होता है, कहाँ समाप्त होता है, या इसकी नींव कहाँ है। व्यक्ति को इस मजबूत जड़ वाले बरगद के वृक्ष को विरक्ति के हथियार से काट देना चाहिए और उस स्थान की खोज करनी चाहिए, जहाँ पहुँचकर कोई वापस नहीं आता। मनुष्य को परम पुरुष का आश्रय लेना चाहिए, जिनके द्वारा सभी चीजें अनादि काल से उत्पन्न हुई हैं।

~ अनुवृत्ति ~

यहाँ, भौतिक संसार की तुलना एक विशाल बरगद के वृक्ष से की गई है, जिसकी जड़ें ऊपर और शाखाएँ नीचे हैं और जिसकी पत्तियाँ वैदिक मंत्र हैं। यह आध्यात्मिक वास्तविकता के प्रतिबिंब के रूप में इस भौतिक दुनिया की एक उपमा है, जिसकी उत्पत्ति, नींव और अंत, पूरी तरह से, माया-ग्रस्त जीवों के

लिए अबोधगम्य है। मनुष्य को विरक्ति के हथियार इस माया को काटना चाहिए तथा कृष्ण के परम धाम की खोज में संलग्न होना चाहिए। तैत्तिरीय आरण्यक इस प्रकार कहता है -

ऊर्ध्वमूलमवाक्छाखं वृक्षं यो वेद सम्प्रति ।  
न स जातु जनः श्रद्धध्यात् मृत्युर्मा मारयादितिः ॥

ऊपर की ओर जड़ों एवं नीचे की ओर शाखाओं वाले इस बरगद के वृक्ष को जो जानता है वह यह श्रद्धा प्राप्त कर लेता है कि मृत्यु उसे मार नहीं सकता। (तैत्तिरीय आरण्यक १.११.५.५२)

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।  
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ १५-५ ॥

अभिमान, भ्रम और बुरी संगत से मुक्त, आध्यात्मिक खोज में समर्पित, काम प्रवृत्ति का त्याग, सुख और दुःख की द्वंद से मुक्त - ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति शाश्वत पद प्राप्त करते हैं।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।  
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ १५-६ ॥

मेरा तेजोमय परम धाम सूर्य, चन्द्र, या अग्नि द्वारा प्रकाशित नहीं है। एक बार उस धाम को प्राप्त कर लेने के पश्चात व्यक्ति पुनः नहीं लौटता।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।  
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ १५-७ ॥

इस संसार के सभी जीव मेरे ही नित्य अंश हैं। ये जीव पाँच इन्द्रियों एवं छठे इन्द्रिय के रूप में अपने मन से कड़ी संघर्ष करते हैं।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।  
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ १५-८ ॥

जब भी कोई जीवात्मा - शरीर का स्वामी, शरीर का ग्रहण या त्याग करता है, तब उसकी इन्द्रियां एवं उसका मन अगले जन्म में उसके साथ ही उसी तरह चलते हैं, जिस तरह पवन सुगंध को अपने स्रोत से उड़ा ले जाता है।

~ अनुवृत्ति ~

भक्ति-योग या कृष्ण-चेतना में पूर्णता, झूठी प्रतिष्ठा एवं माया से मुक्त होने के प्रयास के बिना प्राप्त नहीं होती है। इसे प्राप्त करने के लिए परम-सत्य की खोज में व्यक्ति को समान विचारधारा वाले व्यक्तियों की संगत रखनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, बुरी संगत का त्याग करना चाहिए।

असत संग त्याग - ऐ वैष्णव आचार ।

स्त्री सङ्गी एक असाधु कृष्णाभक्त आर ॥

एक वैष्णव (भक्ति-योगी) को बुरी संगत से बचे रहना चाहिए - ऐसे लोगों से जो भौतिक रूप से आसक्त होते हैं, जिन्हें अवैध यौनक्रिया का लत होता है, और जो पूर्ण सत्य के ज्ञान के अर्जन में रुचि नहीं रखते हैं। (चैतन्य-चरितामृत, मध्य-लीला २२.८७)

श्री कृष्ण का सर्वोच्च निवास भक्ति-योगी का अंतिम गंतव्य होता है और कृष्ण कहते हैं कि उनका निवास सूर्य, चंद्रमा या अग्नि से प्रकाशित नहीं होता। सूर्य, चंद्रमा या अग्नि से प्रकाशित न होने का अर्थ है कि उनका परम धाम भौतिक जगत में मौजूद अंधकार की पहुंच से परे है। कृष्ण के परम धाम में, जो आत्मबोध-युक्त योगियों द्वारा गोलोक वृंदावन के नाम से जाना जाता है, सब कुछ श्रीकृष्ण की प्रभा से उज्ज्वलित है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम् ।

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥

तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् ।

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

वहां न तो सूर्य की रोशनी है, न चाँद की, न तारों की, न ही वहां बिजली चमकती है। फिर अग्नि कैसे जला सकती है? जब परम पुरुष प्रकाशित होते हैं, तब ये सभी प्रकाशित हो जाते हैं। अपनी प्रभा के माध्यम से ही वे सब कुछ रोशन करते हैं। (कठोपनिषद् २.२.१५)

श्री कृष्ण यह भी कहते हैं कि एक बार उनके परम धाम को प्राप्त करने के बाद, कोई भी इस जन्म और मृत्यु के संसार में वापस नहीं आता है। भौतिक दुनिया असीमित दोषों से भरा हुआ है, लेकिन परम धाम अमोघ है। भौतिक जगत के

दोषों में ईर्ष्या, लालच, काम, घृणा, तामसिकता आदि शामिल हैं, लेकिन ये भौतिक गुण कृष्ण के धाम में प्रवेश नहीं कर सकते।

कुछ विचारकों ने यह मान रखा है कि इस भौतिक दुनिया में रहने वाले प्राणी मूल रूप से कृष्ण के परम धाम से अपनी शाश्वत स्थिति से पतित हुए हैं। ऐसे व्यक्तियों को 'पतन-वादी' के रूप में जाना जाता है। 'पतन-वादी' की सोच के अनुसार, श्री कृष्ण का परम निवास दोष युक्त है और ईर्ष्या, असंतोष, लालच, घृणा आदि के अधीन है। दोष युक्त होने के लिए अज्ञानता, विस्मृति और संदेह आदि होना चाहिए। परन्तु, यह जानते हुए कि परम धाम में कोई भौतिक गुण मौजूद नहीं हैं, इसलिए वहां के मुक्त जीवों के भौतिक गुणों से दूषित होना संभव नहीं है।

श्री कृष्ण कहते हैं कि एक बार उस धाम में जाने के बाद भौतिक संसार में कोई नहीं लौटता (यद् गत्वा न निवर्तन्ते)। श्री कृष्ण यह नहीं कहते कि "फिर से" उस परम निवास पर जाने के बाद कोई कभी नहीं लौटता। इसलिए, कृष्ण के शब्दों से यह समझा जाता है कि कोई भी उनके परम धाम से पतन नहीं करता।

आध्यात्मिक और भौतिक दुनिया के सभी जीव श्रीकृष्ण के अवयवभूत अंश हैं - ममैवांशो जिवलोके जीव-भूत सनातनः। हालांकि, वे जीव जो भौतिक प्रकृति से बद्ध हैं, जिन्हें अपनी इंद्रियों पर कोई नियंत्रण नहीं है, और परम धाम का कोई ज्ञान नहीं है, वे बारम्बार इस जन्म और मृत्यु के संसार में पुनर्जन्म लेते हैं। मृत्यु के समय वे भौतिक इच्छाओं और मन के द्वारा अपने अगले शरीर में चले जाते हैं, जिस तरह पवन सुगंध को अपने साथ बहा ले जाता है।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।  
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ १५-९ ॥

कान, आंख, त्वचा, जीभ, नाक और मन के स्वामी के रूप में जीवात्मा, विषय-वस्तुओं का आनंद लेता है।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।  
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १५-१० ॥

जो अज्ञानी हैं वे आत्मा को ना तब समझते हैं जब वह शरीर का त्याग कर रही हो, न तब जब वह शरीर में निवास कर रही हो, और न तब जब वह

विषय-वस्तुओं का भोग कर रही हो। जिन्हें ज्ञान-चक्षु प्राप्त है केवल वे ही इसे समझ सकते हैं।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।  
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ १५-११ ॥

निष्ठावान योगी अपने भीतर स्थित आत्मा को देखते हैं, लेकिन जिनमें सच्ची समझ और आत्म-नियंत्रण की कमी होती है, वे इस बात को समझ नहीं पाते चाहे वे कितना भी प्रयास कर लें।

~ अनुवृत्ति ~

इन्द्रियों के द्वारा आत्मा को जाना नहीं जा सकता और न ही उसे माइक्रोस्कोप या ऐसी किसी वैज्ञानिक तकनीक की सहायता से जाना या देखा जा सकता है, क्योंकि यह अतीन्द्रिय (भौतिक गुणों से परे) है, यह सत्-चित्-आनंद से बना है। फिर भी, जब कोई श्रीकृष्ण से श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान प्राप्त करता है तब वह अपनी बुद्धिमत्ता से आत्मा की उपस्थिति को समझ सकता है। लेकिन जिनकी बुद्धि भटकी हुई होती है और जिन्हें कोई ज्ञान नहीं है वे किसी भी प्रयास से आत्मा को नहीं समझ सकते हैं, चाहे वह शरीर में रहती हो या जब मृत्यु के समय वह शरीर को छोड़ रही हो। जिन्हें सच्चा ज्ञान है और जो अपनी बुद्धिमत्ता का सही उपयोग करते हैं केवल वे ही आत्मा को समझ सकते हैं।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।  
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १५-१२ ॥

यह जानो कि मैं ही सूर्य, चंद्रमा और अग्नि का प्रकाश हूँ जो सारे जगत को रोशन करता हूँ।

गामाविश्य च भूतानिधारयाम्यहमोजसा ।  
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ १५-१३ ॥

अपनी शक्तियों से मैं पृथ्वी में प्रवेश करता हूँ और सभी जीवों का पालन करता हूँ। मैं चंद्रमा बनकर सभी वनस्पतियों का पोषण करता हूँ, और उन्हें जीवन-सत्त्व प्रदान करता हूँ।



अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।

प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १५-१४ ॥

मैं सभी प्राणियों में रहने वाली पाचन की अग्नि (वैश्वानर) हूँ, और सभी प्रकार के भोजन को पचाने के लिए मैं ही अंदर आने वाली प्राण-वायु तथा बाहर जाने वाली अपान-वायु से सम्मिलित होता हूँ।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च ।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५-१५ ॥

मैं सभी जीवित प्राणियों के हृदय में वास करता हूँ, और मुझसे ही स्मरण, ज्ञान और विस्मृति पैदा होते हैं। सभी वेदों द्वारा केवल मुझे ही जाना जाता है। मैं वेदांत का रचयिता हूँ एवं मैं ही वेदों का ज्ञाता हूँ।

~ अनुवृत्ति ~

स्वभाव से यह भौतिक संसार एक अंधकारमय और निर्जीव स्थान है। सूर्य, चंद्रमा और तारों के बिना इस दुनिया में अंधकार ही होता। श्री कृष्ण कहते हैं कि इन खगोलीय ग्रहों को उन्ही से प्रकाश मिलता, वे ही भोजन के पाचन के लिए ऊर्जा प्रदान करते हैं, और सारे जीवन का पोषण भी वे ही करते हैं।

तत् पदं परमं ब्रह्मा सर्वं विभजते जगत् ।

ममैव तद्धनं तेजो ज्ञातुमर्हसि भारत ॥

हे भारत, परम ब्रह्मन सारे जगत् को प्रकाशित करता है। यह जानो कि यह महान प्रकाश मेरा ही है। (हरि-वंश २.११४.११)

यह सोचना कि भौतिक पदार्थ ही जीवन का स्रोत है, निस्संदेह एक अल्प बुद्धिशाली प्रस्ताव है। हमारे पास इसका एक ही उदाहरण यह है की हम हर जगह देखते हैं कि जीवन, जीवन से ही पैदा होता है। हम यह भी देखते हैं कि जीवन की रचना बुद्धिमत्तापूर्ण है। अतः विवेकशील निष्कर्ष यह होना चाहिए कि सभी जीवन एक बुद्धिमत्तापूर्ण जीवन स्रोत से ही उत्पन्न होता है। सब कुछ श्री कृष्ण से ही उद्भव होता है।



ॐ जन्माद्यस्य यतः

परम वे हैं जिनसे यह सृष्टि, पालन, तथा इस व्यक्त जगत का विनाश होता है। (वेदान्त-सूत्र १.१.२)

श्री कृष्ण यह भी कहते हैं वे परमात्मा के रूप में सभी जीवों के हृदय में स्थित होते हैं, और उनसे ही सभी स्मृति, ज्ञान, एवं विस्मृति उत्पन्न होती हैं। वे कहते हैं कि वेदों के माध्यम से केवल उन्हीं को (कृष्ण को) जाना जाता है। वे ही वेदान्त को प्रकट करते हैं, एवं वे ही वेदों के ज्ञाता हैं। इसकी पुष्टि भी हरि-वंश में इस प्रकार की गई है -

वेदे रामयणे चैव पुराणे भारते तथा ।  
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥

आरंभ में, मध्य में और अंत में भी, सभी वेद, रामायण, पुराण और महाभारत केवल श्री कृष्ण की ही महिमा का गुणगान करते हैं। (हरि-वंश ३.१३२.३५)

वेदों को चार मुख्य भागों में विभाजित किया गया है - ऋग, यजुर, साम और अथर्ववेद। उसके बाद आता है उपनिषद् और पूरक साहित्य जैसे अठारह पुराण (श्रीमद्भागवतम् सहित), महाभारत (श्रीमद्भगवद्गीता), रामायण और वेदान्त-सूत्र आते हैं। इन सभी के द्वारा हरि, श्री कृष्ण को ही जाना जाता है।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।  
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १५-१६ ॥

दो प्रकार के जीव होते हैं - वे जो भौतिक जगत में हैं और वे जो आध्यात्मिक जगत (वैकुण्ठ) में होते हैं। भौतिक दुनिया में सभी जीव क्षर (दोषक्षम) हैं, जबकि आध्यात्मिक जगत में सभी जीव अक्षर (अमोघ) होते हैं।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।  
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १५-१७ ॥

एक और व्यक्ति हैं, जो परम पुरुष हैं, जो अविनाशी परम चेतना हैं, और तीनो (उच्च, मध्य, एवं निम्न) लोको में प्रवेश करके उनका पालन करते हैं।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।  
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १५-१८ ॥

मैं सभी क्षर प्राणियों से श्रेष्ठ हूँ, और मैं उनके भी परे हूँ जो अक्षर हैं। इसलिए मैं ब्रह्माण्ड और वेदों में परम पुरुष (पुरुषोत्तम) के रूप में गौरवान्वित हूँ।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।  
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १५-१९ ॥

हे भारत, जो भ्रम से मुक्त होता है वह मुझे परम पुरुष के रूप में जानता है। ऐसा व्यक्ति सब कुछ जानता है और पूरे मन से मेरी आराधना करता है।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।  
एतद्बुद्ध्या बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ १५-२० ॥

हे दोषहीन अर्जुन, इस प्रकार मैंने तुम्हें शास्त्र के सबसे बड़े रहस्य को समझाया है। हे भारत, इसे समझ कर मनुष्य ज्ञान को प्राप्त करता है और उसके सभी कर्म शुद्ध एवं परिपूर्ण हो जाते हैं।

~ अनुवृत्ति ~

इस संसार में दोष युक्त (क्षर) जीव वे हैं जो भौतिक प्रकृति के त्रिगुणों के अधीन हैं और दोष मुक्त (अक्षर) जीव वे हैं जो कृष्ण चेतना की साधना के द्वारा पारलौकिक ज्ञान की खोज में लगे हुए हैं। दोष मुक्त जीवों को सिद्ध पुरुष माना जाता है। श्री कृष्ण कहते हैं कि वे क्षर जीवों से श्रेष्ठ हैं एवं वे अक्षर जीवों से भी परे हैं, क्योंकि वे परम पुरुष (भगवान्) हैं। इसका अर्थ यह है कि सिद्ध पुरुष कभी भी परम पुरुष नहीं बन सकते या कृष्ण के साथ एक (विलीन) नहीं हो सकते हैं। श्री कृष्ण परम पुरुष हैं और वे सदा रहेंगे। भगवद्गीता और पूरे वैदिक साहित्य में इसका उद्घोष पाया जाता है।

एकले ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य ।  
यारे यैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य ॥

अकेले श्री कृष्ण ही सर्वोच्च नियंत्रक हैं। बाकी सभी उनके सेवक हैं। श्री कृष्ण जैसे उन्हें नचाए वैसे ही नाचते हैं। (चैतन्य-चरितामृत, आदि-लीला ५.१४२)

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं उद्धृत्यभुजमुच्यते ।  
वेदाच्छास्त्रं परं नास्ति न देवः केशवात्परः ॥

अपनी बाहुओं को उठाकर, मैं पूर्ण रूप से यह घोषणा करता हूँ कि वेदों से बड़ा कोई शास्त्र नहीं, और केशव (कृष्ण) से श्रेष्ठ कोई देव नहीं है। बार-बार मैं यह कहता हूँ कि यही सत्य है, यही सत्य है, यही सत्य है। (हरि-वंश, शेष-धर्म-पर्व २.१५)

भौतिक संसार में जीवन की परिपूर्णता का अर्थ है - सामाजिक संरचना (धर्म), आर्थिक विकास (अर्थ), भौतिक भोग (काम), और मोक्ष। इतिहास हमें दिखाता है कि शायद ही कभी कोई सभ्यता सामाजिक संरचना, आर्थिक विकास और भौतिक भोग से उपर उठता है। मोक्ष जीवन का चौथा लक्ष्य है, और भौतिक भोग में लीन लोगों द्वारा कदाचित ही कभी इसकी इच्छा जताई जाती है। इस तरह के सुखवादी समाज खाने, सोने, संभोग और अपनी रक्षा की पूर्ति से ही आसानी से संतुष्ट हो जाते हैं। परन्तु, मोक्ष से भी अधिक दुर्लभ जीवन का पांचवा लक्ष्य है प्रेम-भक्ति या भक्ति-योग, प्रेम का योग।

आराध्यो भगवान् ब्रजेश तनयस्तद्धाम वृन्दावनम् ।  
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधू वर्गेण या कल्पिता ॥  
श्रीमद्भागवतम् प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् ।  
श्री चैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ॥

परम पुरुष श्री कृष्ण और उनका परम धाम - वृन्दावन, सर्वाधिक पूजनीय हैं। उनकी पूजा करने की सर्वोच्च विधि वही है जैसे कि सुन्दर गोपियों - ब्रज की युवा पत्नियों, द्वारा अपनाई गई थी। श्रीमद्भागवतम् सबसे शुद्ध और सबसे सप्रमाण शास्त्र है, और दिव्य प्रेम, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष से परे मानव जीवन की पांचवी और सर्वोच्च उपलब्धि है। इस तरह उसे पंचम-पुरुषार्थ के रूप में माना जाता है। यही श्री चैतन्य महाप्रभु का निर्णय है और हम इस निष्कर्ष का सर्वोच्च सम्मान करते हैं। (चैतन्य-मत-मञ्जुष)

अतः, भगवद्गीता के अध्येता को मानव समाज के पहले चार लक्ष्यों में बहुत कम रुचि होती है, क्योंकि ये सभी उपलब्धियाँ अस्थायी हैं और ये परम पुरुष से योग की ओर नहीं ले जाती हैं। जो श्री कृष्ण की ओर ले जाए केवल उसे ही जीवन का लक्ष्य बनाना चाहिए।

## श्रीमद्भगवद्गीता

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां  
वैयासिक्यां भीष्मपर्वाणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु  
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे  
पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥

ॐ तत् सत् - अतः व्यास विरचित शतसहस्र श्लोकों की श्री महाभारत ग्रन्थ के भीष्म-पर्व में पाए जाने वाले आध्यात्मिक ज्ञान का योग-शास्त्र - श्रीमद् भगवद् गीतोपनिषद् में श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद से लिए गए पुरुषोत्तम योग नामक पन्द्रहवें अध्याय की यहां पर समाप्ती होती है।

